RESEARCH FRONT

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

ईशावास्योपनिषद् में वर्णित विश्वशान्ति की परिकल्पना

राकेश कुमार
'असि0 प्रोफेसर,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुहम्मदाबाद गोहना, मऊ

मानव सदैव से ही आत्यन्तिक शान्ति के अन्वेषणार्थ बाह्य जगत के उपादानों के संग्रह के लिए तत्पर है। इस आत्यन्तिक एवं आध्यात्मिक उपशम की अध्याप्ति के लिए परमब्रह्म परमेश्वर ही उसके अभीष्ट हैं। इस परमब्रह्म परमेश्वर के सामीप्य की अनुभूति का सरल, सहज और सर्वोत्तम स्रोत उपनिषद् ही हैं। तत्त्वदर्शी मनीषियों ओर त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपनी उर्वरा बुद्धि के बल पर ब्रह्मविद्या के माध्यम से इन उपनिषदों में सम्पूर्ण मानव जगत हेतु आत्यन्तिक शान्ति की संकल्पना प्रतिपादित की है।

विश्व के प्राचीनतम एवं अपौरुषेय वेद का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषद् को वेदान्त भी कहते हैं क्योंकि इसमें ज्ञान के उच्चतम शिखर का प्रतिपादन किया गया है। यह उपनिषद् वेदवाङ्मयी–रूपी पादप का सुरभित सुमन है, ज्ञान का आदि स्रोत एवं विद्या का अक्षय भण्डार है जहां पाठकों एवं श्रोतागणों को ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या एवं मोक्षविद्यादि का ज्ञान प्राप्त होता है।

उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत परिगणित हैं। प्रस्थानत्रयी, जिसमें मुख्य रूप से उपनिषदें हैं, सभी दर्शनों की आधार भित्ति हैं। भारतीय दर्शन की विविध वीथियाँ चाहे वो आस्तिक हों अथवा नास्तिक, उपनिषद् की ज्ञानधारा के पावन पीयूष को ग्रहण करके ही पल्लवित हुई हैं।[1] वज्र नास्तिक चार्वाक भी अपने मतों की पुष्टि के लिए प्रमाण स्वरूप उक्तियाँ उपनिषद् से ही स्वीकार करता है। अतएव उपनिषद् सभी अध्यात्म चिंतकों के लिए सम्बल प्रदान करने वाली अक्षय निधि हैं। यह ज्ञानराशि उपनिषद् न केवल भारतीयविद्वद्वरों–मनीषियों–ऋषियों–तपस्वियों को ही आकर्षित किया है, अपितु अलबरूनी, शोपनहावर, गोल्डस्टकर तथा फ्रेडरिक श्लेगेल जैसे वैदेशिक विद्वानों को भी आकर्षित किया है जो इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। यह पार्थिव सुधा प्रवाह हमारे ऋषि–महर्षियों, योगी–ध्यानी तथा ज्ञानियों की अखण्ड तपस्या का परिणाम निचय है। योगस्थ होकर उन्होंने यह अक्षुण्ण अमृतानन्द मानवता, विश्वकल्याण एवं विश्वशान्ति के लिए प्रत्यर्पित किया है।

उपनिषद् पद की व्युत्पत्ति 'उप' और 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'षदलृ' धातु में 'क्विप' प्रत्यय के योग से होती है। यहां 'षदलृ' धातु के तीन अर्थ हैं–विशरण (नाश), गति (प्राप्ति), अवसादन (शिथिल)।

''उपनिषादति, सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति ब्रह्मं च गमयति इति उपनिषद्।''[2]

अर्थात् जो विद्या समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले सांसारिक क्रिया–कलापों का नाश करती है, जो संसार के कारणभूत अविद्या के बन्धन को शिथिल करती है तथा जो ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है उसे उपनिषद् कहते हैं।

आचार्य शंकर व्याख्या करते हुए उपनिषद् के सम्बन्ध में लिखते हैं– ''य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावन श्रद्धा भक्तिपुरः सरः सन्तस्तेषां गर्भजन्य जरारोगाद्यवर्ग विनाशयति परं वा ब्रह्म गमयति, अविद्या संस्मरकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयति उप नि पूर्वस्य सादेरेवमर्थ संस्मरणात्।''[3]

उपनिषदों में वर्णित ज्ञान की इसी उत्कृष्टता को देखते हुए शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह ने लगभग पचास से अधिक उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद कराया। पाल डायसन नामक जर्मनी के एक विद्वान ने उपनिषदों का मूल संस्कृत में अध्ययन करके उपनिषद् दर्शन ''Philosophy of

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

Upnisadas'' नामक पुस्तक की रचना की। उसमें लिखा है कि ''उपनिषदों में जो दार्शनिक कल्पना है, वह भारत में तो अद्वितीय है ही सम्भवतः सारे विश्व में अतुलनीय है।[4]

उपनिषदों की संख्या वाक्य महाकोष के अनुसार 223 तथा मुक्तकोपनिषद् के अनुसार 108 है। किन्तु उपनिषद् वाङ्मय में बारह प्रमुख उपनिषदों को स्वीकार किया गया है, जिन पर शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है।[5] वे इस प्रकार हैं– ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, कौषीतकि तथा श्वेताश्वरोपनिषद्।

ईशावास्योपनिषद् उपनिषद् मणिमाला का सुमेरु और श्रृंखला का आद्य है। ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद संहिता का चालीसवाँ अध्याय है। शुक्लयजुर्वेद के प्रथम उन्तालीस अध्यायों में कर्मकाण्ड का विवेचन हुआ है, जबकि ईशावास्योपनिषद् रूप चालीसवें अध्याय में ज्ञानकाण्ड का प्रकाशन हुआ है। उपनिषद् का प्रारम्भ 'ईशावास्यमिदं' इत्यादि मन्त्र से होने के कारण ही इसे ईशावास्योपनिषद् कहा जाता है।

ईशावास्योपनिषद् के मन्त्रों में वर्णित नैतिक मूल्यों के द्वारा वर्तमान में अशान्ति उत्पन्न करने वाली नास्तिकवाद, वर्गवाद, नस्लवाद, भोगवाद आदि सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, क्योंकि ईशावास्योपनिषद् के मन्त्रों में उपर्युक्त समस्याओं का बड़ा ही वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मन्त्र में कहा गया है–

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्कि†च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भु†जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।१।।[6]

ईशावास्योपनिषद् के इस मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा में अभेद सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वे एक हैं, भिन्न नहीं। ऋषि परब्रह्म की अवर्णनीय शक्ति का संकेत मात्र वर्णन कर उनके स्वरूप, स्थिति तथा कार्य आदि पर प्रकाश प्रक्षेपित करते हुए कहता है कि वह परमात्मा इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड मे जो कुछ स्थावर जXात्मक है, सबके स्वामी हैं, नियन्त्रणकर्ता हैं, पालनकर्ता हैं अर्थात् कण–कण में व्याप्त हैं। अतः यह जगत परब्रह्म परमात्मा का ही एक रूप है।

परब्रह्म परमेश्वर से उद्भूत इस संसार में जो कुछ भी चराचर है, किसी को अपना धन न मानते हुए, किसी के धन का लालच न करते हुए, उसका त्यागपूर्वक भोग करने का निर्देश दिया गया है। स्वभावतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसका इस संसार में पुत्र–पुत्री, माता–पिता, भाई–बन्धु, परिवार–ग्राम–भूमि–सम्पत्ति से सम्बन्ध होता है। इसी मिथ्या सम्बन्ध में पड़कर वह वित्तैषणा, पुत्रैषणा तथा मानैषणा रूप त्रिविधैषणा की इच्छा करता है। इसी एषणा मे फंसकर मनुष्य कभी–कभी चोरी, हत्या जैसे अपराध अकरणीय अर्थात् अशुभ कर्म भी करता है जो उसे अशान्ति प्रदान करती है। प्रस्तुत मन्त्र के द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि त्रिविध एषणा के मोह में फंसकर किये गये अशुभ कर्म त्याज्य हैं, क्योंकि यह धन परमार्थतः किसी का नहीं है। इसी मन्त्र को ध्यान मे रखते हुए– ''डॉ0 राधाकृष्णन ने कहा है कि ब्रह्म और जगत की एकता का उपदेश इस उपनिषद् का मुख्य विषय है।''[7]

ईशावास्योपनिषद् के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।२।।[8]

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, परिवार में उसका जन्म हुआ है। जन्मतः परिवार, ग्राम, जनपद, देश के प्रति उसका उत्तरदायित्व हो जाता है। उसे इन सभी उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। जीविका के लिए उसे उपलब्ध सारे कर्मों का निष्पादन करना होता है। इसी कारण दार्शनिकों, चिन्ताकों, उपदेशकों ने उसके लिए आवश्यक शिक्षा का प्रावधान किया कि वे वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

जीविकोपार्जन कर समस्त दायित्वों का निर्वाह करते हुए सारे कर्मों का भगवदर्पित करते हुए पूर्ण जीवन व्यतीत करें।[9]

तात्पर्य है कि शास्त्रोक्त विधि एवं निष्काम भाव से कर्म करते हुए सभी मनुष्य को सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। शास्त्रोक्त विधि से तात्पर्य आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रों में वर्णित नित्य–नैमित्तिक–प्रायश्चित्–उपासना आदि कर्म मनुष्य को करना चाहिए। काम्य तथा शास्त्र में निषिद्ध कर्मों को नहीं करना चाहिए। निष्काम भाव से तात्पर्य है कि जब व्यक्ति की कर्म के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रहती है तब उस व्यक्ति का उस कर्म के प्रति निष्काम भाव कहलाता है।

उपर्युक्त मन्त्र से यह शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अनुशासनात्मक एवं निष्काम भाव से कार्य का सम्पादन करते हुए जीने की इच्छा करनी चाहिए। अनुशासनात्मक ढंग से कार्य करने पर कोई भी उत्कृष्ट और अधिक कार्य करेगा जो उसके समाज और देश के लिए हितकारी होगा और निष्काम भाव से कर्म करने पर अशुभ अर्थात् अकरणीय कर्मों को सम्पादित नहीं करेगा, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए हितकारी एवं शान्ति प्रदायक होगा।

ईशावास्योपनिषद् के छठे मन्त्र में कहा गया है–

'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न जिगुप्सते।।६।।[10]

ऋषि के कथन का अभिप्राय है कि जो साधक स्वात्मज्ञान पाकर सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है और समस्त प्राणियों में स्वयं को देखता है वह व्यक्ति समदर्शी हो जाता है। जो साधक समस्व पा लेता है, वह ऐसी दशा में किसी भी व्यक्ति से घृणा, द्वेष–मात्सर्यादि नहीं करता है। वस्तुतः संसार में परस्पर विद्वेष और घृणा का कारण पार्थक्य बुद्धि है। इसी पार्थक्य बुद्धि के कारण भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में जातिवाद, वर्गवाद, नस्लवाद जैसी समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। जिससे मनुष्य एक–दूसरे से घृणा, हिंसा, अन्याय, शोषण और भेदभाव कर रहा है और सामाजिक वातावरण संघर्षशील होने के कारण अशान्त हो गया है। ऐसी स्थिति में ईशावास्योपनिषद् का यह मन्त्र भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए उपादेय और प्रासंगिक है। इस मन्त्र की उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए श्री अरविन्द का कथन है कि ''न केवल ज्ञान और कर्म अपितु कई विरोधी विचारों का समन्वय प्रस्तुत करना इस उपनिषद् का प्रमुख सिद्धान्त है।[11]

भारतीय आत्मविद्या और एकत्व की प्रतिष्ठा करने वाली इस उपनिषद् का सर्वातिशायी महत्व रहा है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी का कथन है कि ''अब मै इस अन्तिम निर्णय पर पहुंचा हूँ कि यदि सारे उपनिषद् और दूसरे अन्य शास्त्र नष्ट हो जाते हैं और यदि ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मन्त्र ही हिन्दुओं की स्मृति में सुरक्षित रह जाता है तो भी हिन्दू धर्म सदा सर्वदा जीवित रहेगा।[12]

जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहावर ने शान्ति प्रदायक उपनिषदों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए कहा है ''सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों के समान जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है, उससे मेरे जीवन को शान्ति मिली है और वहीं से मुझे मृत्यु में भी शान्ति मिलेगी।''[13]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ईशावास्योपनिषद् में वे मौलिक विचार एवं शिक्षाप्रद उपदेश हैं जो आज भी मानव की दार्शनिक जिज्ञासाओं को शान्त करने के साथ वर्तमानकालिक समस्याओं को दूर कर सम्पूर्ण मानव जगत को शान्ति प्रदान करने में समर्थ हैं। वर्तमान में जातिवाद, वर्गवाद, नस्लवाद, भौतिकवाद, भोगवाद और वैयक्तिकवाद इतना बढ़ गया है कि समाज में अशान्ति, घृणा, हिंसा, अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार, भेदभाव इत्यादि दोष उत्पन्न हो गये हैं। इन दोषों का समाधान ईशावास्योपनिषद् में वर्णित सुख–शान्ति, प्रेम, दया, न्याय, सदाचार, समानता, बन्धुता, समन्वयादि नैतिक मूल्यों द्वारा किया जा सकता है। वर्तमान एवं भविष्य जगत में पूर्ण रूप से वास्तविक शान्ति के लिए

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

ईशावास्योपनिषद् की नैतिक शिक्षा तथा साधनों का अनुकरण आवश्यक है। जिसकी शिक्षाओं का लाभ लेकर भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व शान्तिपथ की ओर अग्रसर हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–8
2. ईशावास्योपनिषद्, हरिनारायण यादव, आगरा पृ0–3
3. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–2
4. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–6
5. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–7
6. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 हरिनारायण यादव, आगरा, पृ0–9
7. द प्रिंसिपल उपनिषत्स, पृ0–585
8. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 हरिनारायण यादव, आगरा, पृ0–10
9. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–13
10. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 हरिनारायण यादव, आगरा, पृ0–14
11. श्री अरविन्द, ईश–उपनिषद्, पाण्डिचेरी, 1995, पृ0–94
12. पी0 बी0 गजेन्द्र गडकर, दटेन क्लासिकल उपनिषदत्स भाग 1, बम्बई, 1981, पृ0–70
13. ईशावास्योपनिषद्, डॉ0 विश्वनाथ झा, लखनऊ, पृ0–5